संपादकीय कार्यालय
प्लॉट नं.10, रोड नं.6, समतापुरी कॉलोनी
न्यू नागोल के पास, हैदराबाद-500 035 (तेलंगाना)
फोन : 040-24054306

संकल्प (त्रैमासिक)

- प्रकाशित सामग्री की रीति-नीति या विचारों से **हिंदी अकादमी, हैदराबाद** या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- **'संकल्प'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

शुल्क भेजने का पता :
मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट **हिंदी अकादमी हैदराबाद** के नाम...
सचिव : डॉ.गोरखनाथ तिवारी
फ्लैट नं.258/ए, ब्लॉक नं.11, तीसरी मंज़िल,
जनप्रिया टाउनशिप, मल्लापुर,
हैदराबाद-500 076 (तेलंगाना)
फोन : 09441017160

मूल्य :
वार्षिक : रु.350/-, **आजीवन** : रु.4,000/- (व्यक्तिगत), संस्थागत रु.5,000/-
संस्थाओं के लिए : **वार्षिक** : रु.800/-, **संरक्षक सदस्यता शुल्क** : रु.5,100/-
विदेशों में वार्षिक : $100

आवरण
नरेंद्र राय 'नरेन'
चित्रकार एवं कवि

शब्द संयोजन :
जी.श्रीराम मूर्ति डॉटा प्रासेसर्स
प्लॉट नं.199, एस.वी.ए.कॉलोनी,
वनस्थलिपुरम, हैदराबाद-500 070
फोन : 092476 32717

मुद्रक :
कर्षक आर्ट प्रिंटर्स
40-ए.पी.एच.बी.
विद्यानगर, हैदराबाद-500 044
फोन:040-27618261, 27653348

ISSN 2277-9264 RNI No. 25388/74

संकल्प त्रैमासिक

वर्ष : 46 * अंक : 1 * जनवरी-मार्च, 2018 ई.

169

अनुक्रम Contents

संपादकीय
5 प्रो.मोहन सिंह/हिंदी पत्रकारिता का इतिहास और स्व.श्री बदरी विशाल पित्ती जी

साक्षात्कार
7 ग्राम्य बोध के चितेरे कवि ओम धीरज

कविता
17 अटल बिहारी वाजपेयी/गीत नहीं गाता हूँ/गीत नया गाता हूँ
18 राम मिलन प्रसाद/मनमीत मेरी
19 डॉ.प्रेम वाजपेयी/ऐसा गाँव हमारा है
20 डॉ.रोहिताश्व आस्थाना/प्रीति के दोहे
21 संतोष कुमार झा/कितना मुश्किल होता है/किससे कहूँ मैं वेदना
22 प्रो.सी.बी.श्रीवास्तव/पर्यावरण संरक्षण
23 वीरेंद्र नाथ उपाध्याय/प्रेरणा गीत
24 बीरेंद्र सिंह विद्रोही/आका को करो प्रणाम
24 कैलाश चंद्र लाल/मुक्तक
25 मुहम्मद कुरैशी निर्मल/हिंदी ग़ज़ल
26 सत्या सिंह/सरसी छंद
27 मत्स्येंद्र शुक्ल/देश के नागरिक सोचें
25 हरिप्रिया आर./छह हाइकु कविताएँ

आलेख
28 प्रो.निर्मला एस.मौर्य/समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ एवं वैचारिक पृष्ठभूमि
32 डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ/अनूप अशेष : वसंत मोड़ों से गुजरती गीतयात्रा
37 सुभाष शर्मा/धर्म का समाजशास्त्र : भारत के संदर्भ में
53 वी.जी.गोपालकृष्णन/आत्महत्या की स्थितियों से जूझता भारत
57 प्रो.मृत्युंजय उपाध्याय/समकालीन हिंदी कविता और बाजारवाद
62 प्रो.उर्मिला सिंह तोमर/आदिवासी सामाजिक संरचना में न्याय व्यवस्था
65 डॉ.किरण तिवारी/पूर्व छायावाद और छायावाद के परिप्रेक्ष्य में हिंदी काव्य संसार

डॉ.नवीन नन्दवाना/भीष्म साहनी के नाटकों में मानवीय संवेदना और संघर्ष की अभिव्यक्ति 72-80

81 डॉ.अमरसिंह वधान/श्री अरविंद का काव्य चिंतन

84 डॉ.विजय हिंदुराव पाटील/हिंदी उपन्यासों में बाजारवाद का चित्रण

87 डॉ.करन सिंह ऊटवाल/आसफ जाही काल में नाटक और रंगमंच का महत्व

90 डॉ.डाली/'चिंता' की प्रतीकात्मकता व भाषिक सौंदर्य

94 डॉ.तबस्सुम बेगम/हाशिए के समाज में स्त्री का आत्मसंघर्ष

97 डॉ.रमा पद्मजा वेदुला/नारी मुक्ति आंदोलन के विविध आयाम

102 डॉ.माहे तिलत सिद्दीकी/ऐसो को उदार जगमाही

104 डॉ.डी.जयप्रदा/राष्ट्रसंघ के लिए हिंदी की महत्ता

107 डॉ.जे.सरिता/हिंदी कहानियों में चित्रित नारी का वात्सल्य रूप

संस्मरण

112 ज्योति नारायण/ज्ञानपीठ पुरस्कृत केदारनाथ सिंह जी

हिंदी कहानी

114 विवेक द्विवेदी/परेशान मत होना पापा

126 देवेंद्र कुमार शर्मा/'FB फ्रेंडशिप'

आदान-प्रदान

134 अनुवादक : पारनंदि निर्मला/मधुर स्मृति

व्यंग्य

141 सत्यनारायण भटनागर/नशा जो कभी उतरता ही नहीं

144 विवेक रंजन श्रीवास्तव/किटी पार्टी

146 संजीव गुप्त/चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर

पुस्तक समीक्षा

148 डॉ.कंचन सेठ/हँस के लेंगे हिंदुस्तान-व्यंग्यात्मक कहानी संग्रह

जन्मदिन स्मरण

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास और स्व.श्री बदरी विशाल पित्ती जी

गरिमामय व्यक्तित्व के धनी राजा बदरी विशाल पित्ती जी हैदराबाद के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, औद्योगिक एवं व्यापारिक वर्ग के श्रेष्ठ पुरुष थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी वे एक साथ संगीत प्रेमी, कला प्रेमी, चित्रकला के पारखी, श्रमिक नेता तथा स्वतंत्रता सेनानी थे।

प्रखर चिंतक, बुद्धिजीवी, लेखक एवं योग्य संपादक उन्होंने दक्षिण भारत में प्रमुखतया हैदराबाद में 'उदय' साप्ताहिक एवं 'कल्पना' मासिक के द्वारा हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार का सफल प्रयास किया था।

'कल्पना' (1949-1978 ई.) अपने समय की सर्वश्रेष्ठ हिंदी पत्रिकाओं में से एक थी। 'कल्पना' के माध्यम से पित्ती जी ने भारत वर्ष के नये साहित्यकारों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया था।

बदरी विशाल पित्ती जी का जन्म 28 मार्च, 1928 ई. को कलकत्ता में हुआ। शनिवार, 6 दिसंबर, 2003 को उनका निधन हैदराबाद में हुआ।

अंग्रेज सरकार के विरुद्ध चल रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में बदरी विशाल पित्ती जी ने 14 वर्ष की आयु से भाग लिया। उन्होंने भूमिगत रेडियो स्टेशन की स्थापना कर हैदराबाद में जनजागृति फैलायी। 1955 में जब संयुक्त सोशियलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई तब वे डॉ.राम मनोहर लोहिया के निकट संपर्क में आए। 1967 ई. में महाराजगंज निर्वाचन क्षेत्र से वे विधायक चुने गये। 1969 में चले तेलंगाणा आंदोलन में इन्होंने भाग लिया। तत्कालीन आंध्र प्रदेश की सरकार ने उन्हें दो महीने के लिए राजमहेंद्रवरम जेल में रखा। तब उनके साथ सर्व श्री डॉ.एम.चेन्ना रेड्डी, कोंडा लक्ष्मण बापू जी एवं एम.एम.हाशिम आदि तेलंगाणा के नेता भी थे।

'कल्पना' के स्वामी, संचालक, संस्थापक पित्ती जी हिंदी के घोर समर्थक थे। उनका मानना था कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ जब अंग्रेजी की जगह शिक्षा का माध्यम होंगी तभी भारतीय छात्रों का चहुँमुखी विकास संभव हो सकता है।

उर्दू शायरी से अत्यंत प्रेम रखने के कारण वे उर्दू और हिंदी दोनों को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते थे। अतः वे उर्दू कविताओं एवं लेखों का लिप्यंतरण करवाकर उन्हें नागरी लिपि में छापते थे। हिंदी के अतिरिक्त बदरी विशाल पित्ती जी ने तेलुगु पत्रकारिता के विकास में भी अपना योगदान दिया था। उनका संबंध तेलुगु साप्ताहिक 'पोरारम' एवं तेलुगु मासिक 'जयंती' से था।

भीष्म साहनी के नाटकों में मानवीय संवेदना और संघर्ष की अभिव्यक्ति

डॉ.नवीन नंदवाना

हिंदी साहित्य संसार में भीष्म साहनी एक प्रमुख नाम है। साहनी जी ने साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से मानवीय संवेदना और जीवन संघर्ष को प्रमुखता से वर्णित किया है। उनका व्यक्तित्व कई विशेषताओं से ओतप्रोत रहा है। आपके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को अभिव्यक्ति देते हुए हिंदी साहित्य जगत के मूर्धन्य आलोचक नामवर सिंह लिखते हैं कि-"भीष्म साहनी वर्तमान हिंदी जगत के उन थोड़े लेखकों में हैं, जो सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं। खास बात तो यह है कि वे अपनी रचनाओं में इस आस्था का ढोल नहीं पीटते। यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है कि इसे इन्हें दिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। उनके सौम्य,शालीन, सहज और विनम्र व्यक्तित्व के साथ विचारों की दृढ़ प्रतिबद्धता इतनी घुल मिल गई है कि कभी-कभी उसके बारे में भ्रम होता है। बिना आक्रामक हुए भी कोई लेखक प्रतिबद्ध हो सकता है, इसकी सर्वोत्तम मिसाल भीष्म साहनी हैं।"[1]

हिंदी जगत के एक ऐसे सहज, शालीन और सौम्य व्यक्तित्व के धनी रचनाकार भीष्म साहनी का जन्म 08 अगस्त, 1915 को वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर में हुआ। हिंदी जगत को आपकी लेखनी ने अतुलनीय योगदान दिया है। सहज प्रतिभा संपन्न इस रचनाकार ने साहित्य की विविध विधाओं में सशक्त लेखन किया है। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि क्षेत्रों में साधिकार लेखन करने वाले इस हस्ताक्षर ने निबंध (अपनी बात), जीवनी (मेरे भाई बलराज), आत्मकथा (आज के अतीत), बाल साहित्य (गुलेल का खेल, वापसी) आदि के साथ-साथ अनुवाद और संपादन आदि क्षेत्रों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। तमस, झरोखे, कड़ियाँ और मय्यादास की माड़ी आदि उपन्यासों के साथ-साथ भाग्य रेखा, वाङ्चू और पहला पाठ आदि कहानी संग्रहों ने जनमानस की संवेदना को झंकृत किया। हिंदी नाटक के क्षेत्र में भी आपने साधिकार लेखन किया है। आपके द्वारा रचित नाटकों में हानूश, कबिरा खड़ा बाजार में, माधवी, मुआवजे, रंग दे बसंती चोला और आलमगीर प्रमुख रचनाएँ हैं जिन्होंने मानवीय संवेदना और संघर्ष की गाथा को पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति दी है।

मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक साहनी जी ने अपनी रुचि व जीवनानुभवों को अपने साहित्य में प्रमुखता से रेखांकित किया है। साहनी जी ने जो कुछ लिखा वो साफ-साफ लिखा। उनके इस लेखन से कहीं भी यह नहीं लगता कि कुछ ऊपर से थोपा हुआ हो या अनावश्यक ओढ़ा हुआ हो।

भीष्म साहनी का नाटक की दुनिया में प्रवेश उनकी प्रथम नाट्य रचना हानूश (1977) से हुआ। इस नाटक के माध्यम से साहनी जी ने एक संघर्षशील कलाकार के संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की है। हानूश में रचनाकार साहनी ने आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व की

चेकोस्लोवाकिया के प्राग नगर की लोककथा को आधार बनाया है। अपने इस नाटक के माध्यम से साहनी जी ने इस बात को दर्शाया है कि राजसत्ता और धनबल के आगे एक कलाकार को कितनी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। सत्ता के प्रमुख पदों पर आसीन लोग किस प्रकार एक कलाकार का शोषण करते हैं। यह नाटक इस बात को प्रमुखता से उद्घाटित करता है। एक ताला सुधारने वाला व्यक्ति हानूश किस प्रकार अपनी एक नई रचना घडी के निर्माण में पूरे समर्पण के साथ जुड़ जाता है और वर्षों की तपस्या सफल होती है वह एक घड़ी के निर्माण के स्वप्न को साकार करता है। महाराज शहर के प्रमुख टावर पर उस कलाकार द्वारा बनाई हुई घड़ी का लोकार्पण करते हैं। देश की जनता के लिए वह घड़ी एक आश्चर्य का विषय होती है। बादशाह सर्वप्रथम तो उस कलाकार का सम्मान करते हैं किंतु थोड़े ही समय बाद एक ऐसी सजा सुनाते हैं जो उसके लिए अकल्पनीय होती है। बादशाह उस कलाकार की आँखें निकाल देने का हुक्म जारी कर देते हैं। आदेश का पालन हो जाता है। शायद बादशाह यह चाहते रहे हों कि ऐसी घड़ी वह रचनाकार और न बना सके। शायद वह चर्च, राजमहल और नगर के व्यापारी तीनों के आपसी द्वंद्व का शिकार हुआ हो। किंतु उसे अपने बीस वर्ष की साधना का फल आँखें खो देने की सजा के रूप में मिलता है। डॉ.जयदेव तनेजा इस संघर्षगाथा के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं कि-"अपनी शक्ति को बनाए रखने के लिए सत्ता किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष और विरोध का फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करती है, किस तरह वह कला और कलाकार का इस्तेमाल अपने निजी हितों की रक्षा के लिए करती है और उसके सामने बड़े से बड़ा कलाकार कितना विवश और निरीह है, इन सबका प्रस्तुतीकरण यहाँ अत्यंत नाटकीयता से हुआ है।"[2]

जब जेकब नामक एक व्यक्ति जो कलाकार द्वारा घड़ी बनाने के कार्य में सहायता करता है, वह जब यह हुक्म सुनता है कि कलाकार की आँखें निकाल लीं जायेंगी तो वह देश छोड़ देता है। उसका मानना होता है कि जिस देश में कलाकार का सम्मान न हो, बल्कि उसे और दंड भुगतना पड़े ऐसे देश में कतई निवास नहीं करना चाहिए। जब दरबारीगण कलाकार पर जेकब को देश से भगाने का आरोप मढ़ते हैं तो हानूश साफ शब्दों में स्थिति को स्पष्ट कर देता है। वह कहता है कि-"महाराज का हुक्म सिर-आँखों पर। मैं हाजिर हूँ। .... घड़ी बन सकती है, घड़ी बंद भी हो सकती है। घड़ी बनाने वाला अंधा भी हो सकता है, मर भी सकता है, लेकिन यह बहुत बड़ी बात नहीं है। जेकब चला गया ताकि घड़ी का भेद जिंदा रह सके और यही सबसे बड़ी बात है।"[3] कलाकार का यह कथन उसके इस संतोष को व्यक्त करता है कि जेकब के चले जाने से उसकी कला जिंदा रहेगी। भले ही उसकी आँखें निकाल ली जाए या उसे मौत के घाट भी उतार दिया जाए तो भी उसकी कला का अंत नहीं होगा। यही उसे संतोष देता है।

नाटक इस बात को भी दर्शाता है कि जिस प्रकार एक माँ कभी भी अपनी संतान का बुरा नहीं चाहती ठीक उसी प्रकार एक सच्चा कलाकार कभी भी अपनी कलाकृति का नुकसान नहीं कर पाता है। जब हानूश घड़ी के खराब होने पर उसे ठीक करने उस टावर के पास चढ़ता है तो उस समय उसके हृदय में विचारों का सैलाब उठ खड़ा होता है। वह एक बारगी तो सोचता है कि एक हथौड़े के प्रहार से इस घड़ी को ही नष्ट कर दे। किंतु वह कलाकार कितने ही

विचारों के द्वंद्व में झूलता हुआ भी उस घड़ी का कोई नुकसान न कर उसे भली प्रकार से ठीक कर देता है।

इस नाटक के कथ्य, शिल्प और स्थितियों के वर्णन के संबंध में डॉ.गिरीश रस्तोगी का मत है कि-"हानूश अपने शिल्प की सादगी, कथ्य के पैनेपन और तीव्र घनीभूत, तनावपूर्ण मानसिक स्थितियों के भावात्मक चित्रण के कारण दर्शक की आंतरिक चेतना को झकझोरते हुए सुखद आश्चर्य की अनुभति कराता है।"[4] वहीं प्रख्यात रंग विश्लेषक डॉ.देवेंद्रराज अंकुर नाटक की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि-"नाटक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि एक खास वक्त में धर्म, राजनीति और कला किस तरह अपने-अपने स्वार्थों के लिए एक-दूसरे के विरोध में उठ खड़े होते हैं, यह परिदृश्य आज भी बिलकुल वैसा ही दिखाई देता है।"[5]

इस प्रकार समग्र रूप से 'हानूश' नाटक कलाकार के संघर्ष की गाथा है। यह उसके जीवन के संघर्ष के साथ-साथ कला जगत के संघर्षों का भी उद्घाटन करता है।

जीवन संघर्षों की अभिव्यक्ति को रचनाकार ने प्रमुखता से वर्णित किया है। अपने नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' के माध्यम से उन्होंने मध्यकालीन भारतीय समाज का यथार्थ उद्घाटित किया है। साहनी जी ने दर्शा दिया है कि हमारा मध्यकालीन समाज कितनी रूढ़ियों और आडंबरों में जकड़ा हुआ था। हिंदू मुस्लिम व राम-रहीम के भेद कट्टरता से व्याप्त थे। 'ना मैं मंदिर, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में'। कहने वाले कबीर को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, इस बात को इस नाटक के माध्यम से भली प्रकार से समझाया गया है। नाटककार ने कबीर के विद्रोही, संघर्षी और परिवर्तनकामी व्यक्तित्व को उद्घाटित किया है। मध्यकालीन समाज के बाह्याडंबरों, मिथ्याचारों,तानाशाहीपूर्ण जीवन, धर्मांधता, रूढ़ियों और संकीर्णता भरे जीवन के विरुद्ध कबीर के संघर्ष को यह नाटक पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ सहज शैली में उद्घाटित करता है।

कबीर के समाज का सच शायद आज के समाज का भी सच है। जाति,धर्म और मजहब की लड़ाइयाँ आज के हमारे समाज में भी उसी प्रकार द्रष्टव्य है। कबीर की चिंता वास्तव में आज के समाज की भी चिंता है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी जब हम शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में बहुत उन्नति कर चुके हैं किंतु आज भी दिलों की संकीर्णताएँ विद्यमान हैं। प्रख्यात नाट्य विश्लेषक डॉ.जयदेव तनेजा नाटक में वर्णित परिस्थतियों व समाज की तुलना आज के समाज व परिस्थितियों से करते हुए लिखते हैं कि-"भीष्म साहनी की यह नाट्यकृति मध्ययुगीन वातावरण में कई मोर्चों पर एक साथ संघर्ष करने वाले कबीर को उनके पारिवारिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक संदर्भों सहित हमारे समकालीन जीवन और जगत के लिए भी प्रासंगिक है।"[6]

शायद नाटककार का अभीष्ट मध्यकालीन समाज के वर्णन के बहाने आज के समाज के यथार्थ को वर्णित करना रहा हो। तभी वह मध्यकालीन समाज की जड़ताओं, रूढ़ियों, कट्टरता, धर्मांधता और राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उठापटक के वर्णन के द्वारा आज के समाज में आम जन के शोषण व उसके साथ हो रहे अन्याय को प्रकारांतर से हमारे सम्मुख लाता है। शोषण, अनीति, अन्याय का स्वरूप जरूर बदल गया हो किंतु उससे होने वाली पीड़ा व दर्द की अनुभूति वही है जो कबीर के समाज में थी। 'झीनी झीनी बीनी चदरिया,

काहे का ताना काहे की भरनी, कौन तार से बीनी चादरिया।' जैसे मधुर पदों को गाने वाले कबीर जब समाज में हिंसा होते देखते हैं तो उनका हृदय करुणा से आप्लावित हो उठता है। और उनके हृदय से कविता के रूप में करुण चीत्कार निकल पड़ती है।

"दिन भर रोजा रखत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसी खुसी खुदाय।।"[7]

कबीर के सुलझे हुए विचार आम जन में सहज ही प्रचारित हो गए। उस काल में भिक्षा वृत्ति से जीवन यापन करने वाले कबीर के इन पदों को गा-गाकर भिक्षा माँगने लगे। रैदास व धन्ना जैसे संत कबीर के साथ जुड़ने लगे। भंडारे व भजन मंडलियों के माध्यम से कबीर ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को समाप्त करने का व्यापक प्रयास किया। कबीर द्वारा अपनाया जा रहा यह मार्ग आसान नहीं था। कबीर को इस मार्ग पर चलने की कीमत चुकानी पड़ी थी। किंतु सत्य, धर्म, न्याय, सद्भाव और सौहार्द के मार्ग का यह पथिक कठिन परिस्थितियों में भी अबाध रूप से चलता रहा। कबीर का घर जला दिया गया। सिकंदर लोदी के कोप का भाजन बनना पड़ा। बादशाह द्वारा दी गई यह चुनौती कि-"आज के बाद कभी मुझे शिकायत मिली कि तूने दीन की तौहीन की है तो मैं तेरी टाँगें चीर दूँगा।"[8] पर इस प्रकार की चुनौतियाँ कबीर को हिला नहीं सकी।

अपनी इस नाट्य रचना के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए भीष्म साहनी लिखते हैं-"नाटक में उनके काल की धर्मांधता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके निर्भीक, सत्यान्वेषी, प्रखर व्यक्तित्व को दिखाने की कोशिश है। उनके अध्यात्म पक्ष को नकारना अथवा उसकी उपेक्षा करना अपेक्षित नहीं था, उस आधार भूमि को स्थिर कर पाना ही अपेक्षित था, जिसमें उनके विराट व्यक्ति का विकास हुआ।"[9] और नाटककार अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल रहा।

संघर्ष की यह गाथा यहीं विराम नहीं लेती है। 'माधवी' नाटक के माध्यम से रचनाकार ने पुरुष प्रधान भारतीय समाज में स्त्री के साथ हो रहे अन्याय को दर्शाया है। पुरुष अपने कर्तव्य के लिए किस प्रकार एक स्त्री को कठिन परीक्षा में डाल देता है, इस बात को भीष्म साहनी का यह नाटक भली प्रकार से दर्शाता है। नाटककार ने महाभारत के प्रसंग के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के साथ हो रह छलावे को उद्घाटित किया है। महाराज ययाति जो अब आश्रमवासी हो चुके हैं। सन्यासी जीवन जी रहे हैं किंतु यश की लालसा अभी तक पूरी नहीं हुई। वे अपना नाम सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र और दानवीर कर्ण की सूची में लिखवाना चाहते हैं। अतः मुनिकुमार गालव की अनुचित माँग को भी अस्वीकार न करते हुए अपने यश के खातिर अपनी पुत्री माधवी को उसे दान स्वरूप दे देते हैं। माधवी यहाँ यह महसूस करती है कि एक स्त्री ही स्त्री की पीड़ा को ठीक से समझ पाती है। इसी कारण वह अपने पिता से प्रश्न करती है कि-"आज माँ होती तो क्या वह मुझे इस तरह दान में देती!"[10]

माधवी का वरदान कि उसका होने वाला पुत्र एक चक्रवर्ती राजा होगा, उसके लिए अभिशाप सिद्ध होता है। मुनि कुमार गालव माधवी के माध्यम से आठ सौ अश्वमेधी घोड़े जुटाने के प्रयत्न में जुट जाते हैं। इस कठिन प्रतिज्ञा की पूर्ति में माधवी कई बार टूटती है। किंतु कर्तव्यपरायणता की अंधी दौड़ में लगा पुरुष समाज उसकी भावनाओं व संवेदनाओं का तनिक

172

भी ध्यान नहीं रखता। माधवी गालव की प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए एक नहीं तीन-तीन राजाओं के रनिवास में रहती है। तीनों को उससे पुत्र की प्राप्ति होती है। तीनों राजा भी उस स्त्री की पीड़ा व अनुभूतियों को नहीं समझते हैं। वे मात्र उसे बच्चा जनने वाली मशीन ही मानते हैं। एक माँ का किसी बच्चे को जन्म देते ही किसी दूसरे के भरोसे छोड़ कर जाना कितना कठिन रहा होगा। यह सब माधवी ने एक बार नहीं तीन-तीन बार सहा है। वह एक ऐसी माँ है जिसकी गोद भरती गई और खाली हो गई। वह इन कठिन घातों को सहते-सहते पूरी तरह टूट जाती है। जब गालव उससे पूछता है कि माधवी तुम क्या चाहती हो? तो उसके प्रश्न का जो जवाब माधवी देती है उससे उसकी मनोदशा का स्पष्ट बोध होता है। वह गालव से कहती है कि-"मैं क्या चाहूँगी? मेरे चाहने से क्या होता है, गालव? मैं तो तुम्हारी गुरु दक्षिणा का निमित्त मात्र हूँ। ... पिताजी ने आदेश दिया तो तुम्हारे साथ चली आई, तुम आदेश दोगे तो किसी राजा के रनिवास में चली जाऊँगी।"[11] वह गालव को ही अपना भाग्य मानती है और जहाँ भी गालव उसे ले जाता है वह हर स्थिति को स्वीकार्य करती है।

माधवी के हृदय में गालव के प्रति प्रेमभाव होता है। इसी कारण वह सारी यातनाएँ इस आशा में चुपचाप सहन कर लेती है कि आखिर में वह पति रूप में गालव का वरण करेगी। किंतु इस अवसर पर भी गालव उसके साथ छलावा ही करता है। जब अंत में माधवी के स्वयंवर की तैयारियाँ चल रही होती हैं तो गालव माधवी को यह बताता है कि हमें जीवन भर कर्तव्य की तीखी धार पर चलना पड़ता है, तो माधवी अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त करती है-"चलते नहीं, दूसरों को चलाते हैं, गालव। यही तो विडंबना है और संसार तुम्हें ही तपस्वी और साधक कहेगा, मेरे पिता को दानवीर कहेगा, और मुझे? चंचल वृत्ति की नारी, जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता। यही ना...?"[12] इस प्रकार माधवी अपने यथार्थ को उद्‌घाटित कर यह बताना चाहती है कि यह पुरुष प्रधान समाज पुरुषों यथा गालव और ययाति आदि को श्रेष्ठ स्थान दे उनका गुणगान करता है किंतु उनके महान बनने में अपनी आहूति देने वाली नारी को उसका दाय प्रदान करने में पीछे रह जाता है। शायद इसी कारण माधवी यह महसूस करने लगती है कि उसके चारों ओर कर्तव्य परायण दानव घूम रहे हैं। जीवन भर गालव की प्रतिज्ञापूर्ति में लगी माधवी अंत में गालव का साथ भी नहीं पा सकती। कारण कि गालव भी अब शारीरिक रूप से कमजोर और शिथिल उस माधवी को पत्नी रूप में स्वीकारना नहीं चाहता और माधवी के पास वनगमन के अलावा कोई दूसरा मार्ग ही नहीं रहता है। इन्हीं स्थितियों को ध्यान में रखते हुए भवदेय पांडेय लिखते हैं कि-"भीष्म साहनी ने 'माधवी' नाटक में नारी मुक्ति का महज अतीत वाचन ही नहीं किया है बल्कि स्त्री-मुक्ति-यात्रा के लिए हरी झंडी दिखलाई है। ... आज के स्त्री विमर्श के युग में माधवी ने गालवों, ययातियों और विश्वामित्रों के चेहरों के मुखौटे हटा दिए हैं।"[13]

भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक 'मुआवजे' एक अलग प्रकार की समस्या को सामने लाता है। दंगे की संभावना अलग-अलग वर्ग के लोगों की मानसिकता को किस प्रकार प्रभावित करती है, इस बात को नाटककार ने बखूबी वर्णित किया है। नाटककार ने दंगे से उत्पन्न स्थितियों व सरकारी तैयारियों आदि को व्यंग्यात्मक रूप से मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। नाटक की विषयवस्तु के बारे में नाटककार भीष्म साहनी लिखते हैं कि-"यह प्रहसन आज

की विडंबनापूर्ण स्थिति पर किया गया व्यंग्य है। नगर में सांप्रदायिक दंगे भड़क उठने का डर है। इक्का-दुक्का, छोटी-मोटी घटनाएँ भी घट चुकी हैं। इस तनावपूर्ण स्थिति का सामना किस प्रकार किया जा सकता है, हमारा प्रशासन, हमारे नागरिक, हमारा धनी वर्ग, हमारे सियासत दां किस तरह इसका सामना करते हैं, इसी विषय को लेकर नाटक का ताना-बाना बुना गया है।"[14]

पुलिस कमिश्नर द्वारा मंत्री के आदेश से की गई दंगे से निपटने की तैयारी हास्यास्पद लगती है। वे बताते हैं कि-"हमने सब इंतजाम पहले से कर लिया है। मुआवजे का भी प्रबंध कर लिया है। ... मरनेवालों को सगे-संबंधियों को मुआवजा देने के लिए। कत्ल किए जाने पर दस हजार, जख्मी को तीन सौ, मामूली चोटें आने पर कुछ नहीं, सिर्फ मरहम पट्‌टी। ऐसा मंत्री जी का हुक्म है।"[15] अलग-अलग स्थितियों में दिये जाने वाले मंत्री के तीन भाषण भी पहले से तैयार करवा लिए जाते हैं। ये सारी तैयारियाँ एक अजीब वातावरण की सृष्टि करती हैं। लोग मुआवजा प्राप्त करने के लिए किस प्रकार गलत और अनैतिक कार्य करने को तैयार हो जाते हैं, इस बात का भी यह नाटक भली प्रकार से उद्‌घाटन करता है। अपने इस नाटक के माध्यम से कर्मचारियों व राजनेताओं की अकर्मण्यता, खोखलेपन व भ्रष्टाचार को वर्णित किया है।

साहनी जी ने जीवन की विद्रूपताओं को वाणी प्रदान की है। उन्होंने इस नाटक के माध्यम से यह दर्शा दिया है कि मुआवजे पाने की अंधी दौड़ में या यों कहें कि धन के लालच में व्यक्ति की संवेदनाएँ किस प्रकार खोखली हो जाती है, यह इस नाटक में भली प्रकार से देखा जा सकता है। सेठ छोटेलाल का हथियार खरीदना, जग्गा का पैसों की खातिर दूसरों का खून करने के लिए तैयार होना, मुआवजे के लालच में दीनू जैसे पात्र का मरने के लिए तैयार होना सब कुछ इस बात को दर्शाता है कि इस नाटक के माध्यम से रचनाकार ने हमारे देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आदि स्थितियों को एक सूत्र में पिरोने का सार्थक प्रयास किया है। नाटक के संबंध में डॉ.रीतारानी पालीवाल लिखती हैं कि-"चरमराई प्रशासनिक व्यवस्था और विकृत होते सामाजिक संबंधों को 'मुआवजे' तीखे व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। दुकानदार, व्यापारी, बिचौलिया, अफसर, नेता, सिपाही, दरवेश, रिक्शाचालक, झुग्गी झोंपड़ीवासी आदि के व्यवहार के माध्यम से विभिन्न वर्गों की मानसिकता उजागर होती है। मानवीय संबंधों के विघटन का वास्तविक रूप उस समय दिखाई देता है जब मुआवजे की रकम पाने के लोभ में लोग सगे संबंधियों की मौत का इंतजार करने लगते हैं।"[16] इस प्रकार 'मुआवजे' नाटक देश की युगीन परिस्थितियों पर करारा व्यंग्य करता है।

अपने नाटक 'रंग दे बसंती' के माध्यम से भीष्म साहनी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण घटना 'जलियाँवाला बाग हत्याकांड' को आधार बनाया है। इसमें रचनाकार ने पंजाब के तत्कालीन परिदृश्य को वर्णित करते हुए वहाँ आयोजित होने वाले जलसों, उन पर लगाई जानेवाली पाबंदियों तथा हड़ताल आदि का यथार्थ चित्रण किया है। अंग्रेजी हुकूमत के दौरान भारतीयों पर अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों व इस हत्याकांड को अंजाम देने वाले जनरल डायर की नीतियों व व्यवहार आदि को भी नाटककार ने यहाँ प्रमुखता से वर्णित किया है। डॉ.किचलू व सत्यपाल के भाषणों से अंग्रेज सरकार में भय व आशंका रहती है कि इनके भाषणों से जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध चेतना जागृत होगी। जनरल डायर के आदेश से

गोलियाँ चलने से जलियाँवाला बाग में भीषण नरसंहार होता है। डॉ.जयदेव तनेजा लिखते हैं कि-"उस दौर के समाज, देश-प्रेम और आजादी पर मर मिटने को तैयार जन सामान्य की उफनती हुई भावनाओं का प्रदर्शन करता यह तीन अंकों और दस दृश्यों का ऐतिहासिक नाटक अंग्रेजी शासन के चेहरे पर लगे शराफत, इंसानियत और इंसाफ के सभी मुखौटे नोंचकर फेंक देता है।"[17]

किस प्रकार अंग्रेजी हुकूमत भारतीय जनता पर मनमाना दबाव बनाती थी और विरोध करने पर जनता का निर्ममतापूर्वक दमन करती थी, साथ ही उस खून-खराबे की जिम्मेदारी भी भारतीयों पर ही डाली जाती थी। नाटककार भीष्म साहनी ने इन स्थितियों को उद्घाटित करते हुए अंग्रेज अधिकारी माइकल ओड्वायर के कथन के हवाले से लिखा है कि- "मैं अखबार निकालने वालों और जलसे-जुलूस निकालने वालों को खबरदार कर देना चाहता हूँ कि सरकार अपना कानून लागू करेगी और ऐसा करने पर अगर खून-खराबा हुआ तो इसकी जिम्मेदारी उन लोगों पर होगी जो जनता को कानून तोड़ने के लिए भड़का रहे हैं।"[18] इस दौर में जब गाँधीजी पंजाब में लोक जागरण के निमित्त अपनी दिल्ली से पंजाब की यात्रा प्रारंभ करते हैं तब अंग्रेज अधिकारी उन्हें बीच रास्ते में ही रोक देते हैं।

स्वतंत्रता के इस आंदोलन के निमित्त जब हिंदू व मुसलमानों की आपसी मैत्री अंग्रेजों को दिखाई पड़ती है तो वह इनकी आँखों में खटकती है। वह इन दोनों के बीच दूरियाँ लाने का प्रयास करते हैं। भारतीय लोग पंजाब में 'हिंदू-मुसलमान की जय', 'भारत माता की जय' और 'महात्मा गांधी की जय' का उद्घोष करते हुए भारतीय स्वाधीनता संग्राम को शांतिपूर्ण व अहिंसक तरीके से आगे बढ़ाना चाहते हैं किंतु अंग्रेज अधिकारी उनकी गतिविधियों के मनमाने अर्थ निकालकर भारतीयों के विरुद्ध हिंसक कार्यवाही करते हैं। स्थानीय कॉलेज का प्रिंसिपल वाथुर जब अमृतसर शहर के डिप्टी कमीश्नर माइल्स इर्विंग के समक्ष अंग्रेजी सरकार की नीतियों व कार्य प्रणाली पर प्रश्न चिह्न अंकित करते हैं तो इर्विंग जो उससे कहते हैं उससे अंग्रेज अधिकारियों व सत्ता के मनसूबे स्पष्ट हो जाते हैं। इर्विंग कहता है कि-"कोई भी सत्ताधारी इंसान हमदर्दी को प्राथमिकता नहीं देगा। इस बात को समझ लो, वाथुर, हम यहाँ हुकूमत करने आए हैं, किसी की सेवा करने नहीं आए हैं। जिन लोगों पर मैं हुकूमत करता हूँ अगर वे कमजोर होंगे, आपस में बँटे होंगे, तो मेरे लिए हुकूमत करना ज्यादा आसान होगा। मैं नहीं चाहता कि वे एकजुट हो जाएँ और मिलकर मुझ पर हमला कर दें। कभी-कभी रियाया को चुप कराने और उसे थपथपाने के लिए इंसानी हमदर्दी का ढोंग रचा जाता है, ताकि उसका सहयोग मिलता रहे।"[19] इस प्रकार अंग्रेज अधिकारी भारतीयों की सदाशयता का अनावश्यक लाभ उठाते थे। कभी वे झूठी हमदर्दी दिखाकर भारतीयों के साथ छलावा करते थे।

डॉ.किचलू और सत्यपाल जो अमृतसर में स्वाधीनता आंदोलन के प्रमुख लोगों में से थे जिसे अंग्रेज अधिकारी धोखे से गिरफ्तार कर नजरबंद कर देते हैं। उन्हें शहर से बाहर धर्मशाला में भेज दिया जाता है। इसके विरोध में कन्हैयालाल के नेतृत्व में जलियाँवाला बाग में जलसा आयोजित किया जाता है। अंग्रेज इसका भी विरोध करते हैं। बाद में जब बैशाखी के अवसर पर, जिस दिन सिख पंथ की स्थापना हुई थी, सभी लोग जलियाँवाला बाग में इकट्ठे होते हैं। जनरल डायर अपने सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचकर अंधाधुंध गोलीबारी शुरू कर देता

है। चारों ओर लाशों के ढेर बिछ जाते हैं। हेमराज नामक कांग्रेसी कार्यकर्ता जो पूरे अमृतसर में आजादी की अलख जगाता है, इस हत्याकांड में मारा जाता है। देश के निमित्त प्राण न्योछावर करने पर उसकी पत्नी रतन देवी दुख तो प्रकट करती है फिर भी इस पुनीत कार्य के लिए बलिदान देने के कारण पति की मृत्यु पर भी वह अपने को विधवा न मानकर चिर सुहागन मानती है। वह कहती है-"तूने अपने लिए कभी कुछ नहीं माँगा। तू अपनी जान निछावर कर गया। मैं पापिन तुझे सारा वक्त उलाहने देती रही। तेरे साथ झगड़ती रही, पर मुझे क्या मालूम था, तू सचमुच चला जाएगा। मैं कहाँ लुट-पुट गयी? मैं तो चिर सुहागिन हूँ। जिसका घरवाला ऐसा शूरवीर हो। तू तो मेरा शूरमा पति है।"[20] साहनी जी ने अपने बचपन और युवावस्था में देश की जिन स्थितियों को बड़ी बारीकी से देखा था, उन्हीं का सूक्ष्मांकन इस नाटक के माध्यम से किया है। यह नाटक हमारे राष्ट्रभक्तों को एक प्रकार से श्रद्धांजलि है।

साहनी जी द्वारा रचित आखिरी नाटक 'आलमगीर' है। यह भारतीय इतिहास के मुगल काल के राजनीतिक घटनाक्रमों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। शाहजहाँ अपने चारों बेटों दारा, औरंगजेब, शुजा और मुराद को क्रमशः कंधार, दक्खिन, बंगाल और गुजरात का क्षेत्र सौंप देता है किंतु बाद में औरंगजेब शाहजहाँ की बीमारी का लाभ उठाते हुए स्वयं सत्ता हथिया लेता है। वह दारा को युद्ध में हरा देता है। मुराद को अपने चातुर्य से अपने साथ मिला लेता है। सारी परिस्थितियाँ इस प्रकार कर देता है कि जहाँनारा को बादशाह की ओर से 'आलमगीर' नामक पुश्तैनी तलवार उसे सौंपनी पड़ती है। साथ ही बादशाह का संदेश देती है-"बादशाह सलामत ने तुम्हें आलमगीर का खिताब अता फर्माया है। तुम्हारे लिए एक पैगाम भेजा है। उन्होंने फर्माया है कि तुम दिल्ली के तख्त पर बैठोगे। बाकी तीनों भाई अपने-अपने सूबों में लौट जाएँगे और अपनी सूबेदारी संभालेंगे।"[21]

वह अपने भाई दारा को पकड़ने के लिए खलीलुल्लाह को भेजता है। अपने पिता को नजरबंद कराने के लिए व किले पर कब्जा जमाने के लिए महमद आजम को जिम्मा सौंपता है। अपने भाई मुराद को बंदी बनवा देता है। तख्त के लालच में वह अपने भाई दारा का वध करवा देता है। अपनी महत्वाकांक्षा के चलते वह शक्की हो जाता है। उसे किसी पर विश्वास नहीं रहता। वह किसी एक काम के लिए किसी को भेजता है तो उस पर ध्यान रखने के लिए किसी दूसरे को नियुक्त करता है और फिर दोनों पर ध्यान रखने के लिए किसी तीसरे को लगाता है। उसके इस स्वभाव को जहांनारा इस प्रकार बताती है-"कोई फर्द नहीं जिस पर वह शक न करने लगे हों। दरबार में उमरा उनके सामने खौफजद खड़े रहते हैं। कोई नहीं जानता कि कल बादशाह सलामत का क्या रुख होगा। ... किसी ओहदेदार को किसी मुहिम पर भेजते हैं तो उस पर नजर रखने के लिए किसी दूसरे मनसबदार को उसके साथ जोड़ देते हैं। फिर दोनों पर नजर रखने के लिए किसी तीसरे को।"[22] और औरंगजेब की इस नीति का परिणाम यह होता है कि वह स्वयं अकेला पड़ता जाता है। अंत में वह सबसे टूट जाता है। अपने बुढ़ापे में अपने को अकेला महसूस करता है। अब उसे परिवार की याद आने लगती है। इस प्रकार यह नाटक औरंगजेब की मानसिकता, उसकी कूटनीति, उसके राजनीतिक दाँवपेच सभी को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी हिंदी जगत के एक ख्यातनाम नाटककार हैं। उनके नाटक मानवीय संवेदना और जीवन संघर्ष को यथार्थ अभिव्यक्ति देते हैं। उनका नाट्य साहित्य सहज मानवीय संवेदनाओं और युगीन जीवन चुनौतियों को गहराई से वर्णित करता है। 'हानूश' में कलाकार का संघर्ष है तो ठीक उसी प्रकार का संघर्ष 'कबीरा खड़ा बाजार में' में भी द्रष्टव्य है। हानूश का परिवेश विदेशी धरा का है तो 'कबीरा खड़ा बाजार में' का भारतीय मध्यकालीन समाज का। 'माधवी' के माध्यम से रचनाकार ने महाभारत के घटनाक्रम के माध्यम से आज के पुरुष प्रधान समाज में स्त्री जीवन की त्रासदी को उकेरा है। 'मुआवजे' व्यंग्य रूप में सत्ता, नौकरशाही और राजनीति के यथार्थ को दर्शाता है। 'रंग दे बसंती चोला' में जलियाँवाला बाग हत्याकांड और भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के घटनाक्रम वर्णित है। भारतीय इतिहास के मुगलकालीन घटनाक्रम, खास तौर पर औरंगजेब के सत्तासीन होने व उसके शासक बनने के बाद हुए राजनीतिक, कूटनीतिक षडयंत्रों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

वास्तव में भीष्म साहनी मानवीय संवेदना के कुशल चितेरे हैं। जीवन और जगत के विभिन्न बिंदुओं को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ वर्णित किया है। नाटकों के वर्ण्य बड़ी ही सहजता से वर्णित किए हैं। भाषा और भाव बिंदु आद्योपांत बाँधे रहते हैं। मानवीय मूल्यों के निकष पर भी ये नाटक खरे उतरते हैं। आपके नाटकों का फलक बहुत व्यापक है और अपने उद्देश्य पर खरे उतरने वाले हैं।

संदर्भ सूची :

(1) सारिका, अगस्त, 1990-पृ.441, (2) जयदेव तनेजा, हिंदी नाटक : आज, कल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000-पृ.82, (3) भीष्म साहनी, हानूश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003-पृ.102, (4) डॉ.गिरीश रस्तोगी, हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002-पृ.234, (5) डॉ.देवेंद्रराज अंकुर, आजकल पत्रिका, अंक फरवरी, 2004-पृ.09, (6) जयदेव तनेजा, हिंदी रंगकर्म : दशा और दिशा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988-पृ.181, (7) भीष्म साहनी, कबिरा खड़ा बजार में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002-पृ.21, (8) वही-पृ.110, (9) वही-पृ.09, (10) भीष्म साहनी, माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999-पृ.19, (11) वही-पृ.23, (12) वही-पृ.93, (13) आलोचना (भीष्म साहनी स्मृति अंक), सं.नामवर सिंह, अप्रैल-सितंबर, 2004-पृ.200, (14) भीष्म साहनी, मुआवजे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1993-पृ.07, (15) वही-पृ.12, (16) गोपालराय, सं.समीक्षा, अप्रैल-जून, 1993-पृ.29, (17) जयदेव तनेजा, हिंदी नाटक : आजकल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000-पृ.145, (18) भीष्म साहनी, रंग दे बंसती चोला, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007-पृ.13, (19) वही-पृ.66, (20) वही-पृ.86, (21) भीष्म साहनी,आलमगीर, किताबघर, नई दिल्ली,2003-पृ.37, (22) वही-पृ.69

संपर्क सूत्र : सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001, राजस्थान, ई-15, विश्वविद्यालय आवास, अशोक नगर, उदयपुर, मोबाइल-9828351618, ई.मेल-nandwana.nk@gmail.com